आकर-ग्रंथमाला—४

पद्माकर

(ग्रंथावली)

संपादक
विश्वनाथप्रसाद मिश्र

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
मुद्रक : महताबराय, नागरी मुद्रण, वाराणसी
संवत् : २०१६ वि०, प्रथम संस्करण, १६०० प्रतियाँ
मूल्य : १०)

offsite
PK
2076
.P2
A6
959g

माला का परिचय

नागरीप्रचारिणी सभा ने अपनी हीरक-जयंती के अवसर पर जिन भिन्न-भिन्न साहित्यिक अनुष्ठानों का श्रीगणेश करना निश्चित किया था उनमें से एक कार्य हिंदी के आकर-ग्रंथों के सुसंपादित संस्करणों की पुस्तकमाला प्रकाशित करना भी था। जयंतियों अथवा बड़े-बड़े आयोजनों पर एकमात्र उत्सव आदि न कर स्थायी महत्त्व के ऐसे रचनात्मक कार्य करना सभा की परंपरा रही है जिनसे भाषा और साहित्य की ठोस सेवा हो। इसी दृष्टि से सभा ने हीरक-जयंती के पूर्व एक योजना बनाकर विभिन्न राज्य-सरकारों और केंद्रीय सरकार के पास भेजी थी। इस योजना में सभा की वर्तमान विभिन्न प्रवृत्तियों को संपुष्ट करने के अतिरिक्त कतिपय नवीन कार्यों की रूपरेखा देकर आर्थिक संरक्षण के लिए सरकारों से आग्रह किया गया था जिनमें से केंद्रीय सरकार ने हिंदी-शब्दसागर के संशोधन-परिवर्धन तथा आकर-ग्रंथों की एक माला के प्रकाशन में विशेष रुचि दिखलाई और ६–३–५४ को सभा की हीरक-जयंती का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति देशरत्न डा० राजेंद्रप्रसाद जी ने घोषित किया—'मैं आपके निश्चयों का, विशेषकर इन दो (शब्दसागर-संशोधन तथा आकर-ग्रंथमाला) का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए की सहायता, जो पाँच वर्षों में, बीस-बीस हजार करके दिए जायँगे, देने का निश्चय हुआ है। इसी तरह से मौलिक प्राचीन ग्रंथों के प्रकाशन के लिए पचीस हजार रुपए की, पाँच वर्षों में पाँच-पाँच हजार करके, सहायता दी जायगी। मैं आशा करता हूँ कि इस सहायता से आपका काम कुछ सुगम हो जायगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।'

केंद्रीय शिक्षामंत्रालय ने ११–५–५४ को एफ ४–३–५४ एच ४ संख्यक एतत्संबंधी राजाज्ञा निकाली। राजाज्ञा की शर्तों के अनुसार इस माला के लिए संपादक-मंडल का संघटन तथा इसमें प्रकाश्य एक सौ उत्तमोत्तम ग्रंथों का निर्धारण कर लिया गया है। संपादक-मंडल तथा ग्रंथ-सूची की संपुष्टि भी केंद्रीय शिक्षामंत्रालय ने कर दी है। ज्यों-ज्यों ग्रंथ तैयार होते चलेंगे, इस माला में प्रकाशित होते रहेंगे। हिंदी के प्राचीन साहित्य को इस प्रकार उच्च स्तर के विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं तथा इतर अध्येताओं के लिए सुलभ करके केंद्रीय सरकार ने जो स्तुत्य कार्य किया है उसके लिए वह धन्यवादार्ह है।

हिम्मतबहादुर-बिरुदावली

(छप्पय)

जय जय जय ब्रज-जलधि-चंद आनंद-बढ़ावन।
जय जय जय नँदनंद जगत-दुख-दंद घटावन।
जय जय केसी-कंस-बच्छ-बक-रच्छस-दंडन।
जय जय गिरिबर-धरन मान-मघवा-मन-खंडन।
जय पदमाकर भारथ-समर पारथ-सख परसिद्ध धनि।
नित नृप अनूप गिरि भूप कहँ बिजय देहु जदुबंस-मनि ॥ १ ॥

(हरिगीतिका)

नित देहु जय जदुबंस-मनि–अवतंस नौऊ खंड को।
गिरिराज - इंद्र - नरिंद्र - नंदन भवन तेज-अखंड को।
पृथु-रित्ति नित्त सुबित्त दै जग जित्ति कित्ति अनूप की।
बर बरनिये बिरदावली हिंमतबहादुर भूप की ॥ २ ॥

(हाकल)

हिंमतबहादुर भूप है सुभ संभु-रूप अनूप है।
दिल-दान-बीर दयाल है अरि-बर-निकर को काल है ॥ ३ ॥
सुख-साहिबी अमरेस है भुव-भार-धर भुजँगेस है।
मन-मौज देत महेस है गुन-ज्ञानवान गनेस है ॥ ४ ॥

---

[१] सब परसिद्ध (खोज); सष परसिद्धि (पाल); सखयरु सिद्ध (दीन)।

अरि-तोम-तम-तिमिरारि है अरि-नगर-दग्ध-दमारि है।
जग-माँझ दीनदयाल है तन महाबाहु बिसाल है ॥ ५ ॥
धन ध्रुव-धरम को मूल है अब हिंदु-लाज-दुकूल है।
दुति दिपति देह मनोज है मनु मौज-देतनि भोज है ॥ ६ ॥
सुभ-डील सील-समुद्र है घमसान मैं जनु रुद्र है।
चौंसठि कलानि प्रबीन है दुज-देवतानि अधीन है ॥ ७ ॥
मुख-बोल कहत अडोल है गज-बाजि देत अमोल है।
सुभ-सत्य जनु हरिचंद है नित प्रजनि आनँद-कंद है ॥ ८ ॥
दुख-दायकन को काल है जग कीन्ह जिहि जस-जाल है।
अति दिपत निज-कुल-दीप है बर-बिक्रमी अवनीप है ॥ ९ ॥
कलि-सिंधु-पुन्य-जहाज है करि देत सबके काज है।
कवि-कुल-कमल को भान है परतीति-नीति-निधान है ॥१०॥
गुन - ज्ञान - मान - सुचंद है नित करत खल-मुख मंद है।
जग औतर्यौ जु अनूप है महिपाल नवरस-रूप है ॥११॥
निज नाइकन जु सिँगार है अरि लखत बीर अपार है।
लखि दीन करुना-बत्स है खल-कतल मैँ बीभत्स है ॥१२॥
निज खिलवतिन मैँ हास है भय-रूप दुरजन-पास है।
हय चढ़त अद्भुत होत है सर लेत रुद्र-उदोत है ॥१३॥
सिव-भजन सांत सुजान है जिहि की समान न आन है।
हिंमतबहादुर नृप बली जिहिँ सेन सत्रुन की दली ॥१४॥
दिग-बिजय-काज महूम की अरि-देस-देसन धूम की।
गूजर-गलीम लगाइकै सु बुँदेलखंडहि आइकै ॥१५॥
दतिया सु प्रथम दबा दई खंडी सु मनमानी लई।
फिरि मुलक नृप छतसाल को दाबो प्रबल रिपु-जाल को ॥१६॥
जहँ अमल अर्जुन इक करै नहि बादसाहन कौँ डरै।
जिहिँ लूटि नृप बहुतै लए बहु मारि-मारि भजा दए ॥१७॥
तिहि पै नृपति अति कोपिकै आयो अटल पग रोपिकै।
सब मुलक जयती करि लियौ फिरि बाँटि फौजन को दियौ ॥१८॥
इहि क्रम सु अर्जुन के निकट आयौ नृपति अति ही बिकट।
नद केन पै डेरा करे तहँ जुद्ध कौँ भे हरबरे ॥१९॥

सुभ जोतिषी-सु बुलाइकै पूँछो सुदिन सिर नाइकै।
अब कहौ जुद्ध कबै करैँ जब कहौ साइत तब लरैँ ॥२०॥
यह सुनि हुकुम महराज को दिल खुसी जोतिषराज को।
सु सरूपसिंह सुनाम के बोले बचन जय-काम के ॥२१॥
सुर सास्त्र सकल बिचारिकै सुभ दिन कह्यौ निरधारिकै।
संबत अठारह सै सुनौ उनचास अधिक हिये गुनौ ॥२२॥
बैसाख बदि तिथि द्वादसी बुधवार-जुत यह याद-सी।
यह सुभ दिवस है लरन को है जुवा सुर नृप-बरन को ॥२३॥
यह अजैगढ़ बलहीन है जहँ अरिन डेरा कीन है।
यह सुनि सुदिन सुख पाइकै डंका दियौ सिव ध्याइकै ॥२४॥
सुभ संख सूरन के बजे रनधीर बीर सबै सजे।
दुंदुभि - धुकारैँ धुक्कहीँ अरि सुनत जित-तित लुक्कहीँ ॥२५॥
तहँ प्रबल दल-बल सज्जिकै चढ़ि चल्यौ हरबर गज्जिकै।
रनधीर बीर पमार पै जहँ अर्यौ अर्जुन रार पै ॥२६॥
सँग लिये छत्रिन की कुरौँ कबहूँ न जे रन मैँ मुरौँ।
चौहान चौदह आकरे धंधेर धीरज-धाकरे ॥२७॥
बुंदेल बिदित जहान मैँ जे लरत अति घमसान मैँ।
बघरू बघेले करचुली जिनकी न बात कहूँ डुली ॥२८॥
रन रैकवारन के झला जे करत अरि-दल पै हला।
गज्जत सुहरवारहु सजे जुरि जंग जे न कहूँ भजे ॥२९॥
बर बैस बीर जुझार जे झुकि झमकि झारत सार जे।
गौतम तमकि जे रन करैँ अरि काटि कटि-कटि कै लरैँ ॥३०॥
पड़िहार हार न मानहीँ जिनकौँ हरष घमसानहीँ।
उद्धत सुलंकी साहसी जे करत रन मैँ राह-सी ॥३१॥
रजपूत राना हैँ सजे जिनके खड़ग रन मैँ जगे।
हरष सु हाड़ा हिंमती जिनकी जगत रन-किंमती ॥३२॥
राठौर दुर - ठौरन गने रिपु जियत नहिँ जिनके हने।
रन-करकरे कछवाह हैँ जे लरत दिग्घ दुबाह हैँ ॥३३॥
सँग लिये सूर सिसौदिया जिनको जुरत फूलत हिया।
तहँ तौँर तीखन ताकिये रन-बिरद जिनके बाँकिये ॥३४॥

सब तोपखानो अग्र करि धरि धीर इत रहि जाइये।
जब टूटि जाइ कराल संगर तब अरिन पर धाइये ॥६३॥

यह सुनि बिचार पमार तुरतहिँ कोप करि बोलो तबै।
आजनम तेँ जु सुभाउ मेरो बीर हम जानत सबै।
तन-ओट के नाते जु कबहूँ ढाल हम आड़ी नहीँ।
भट-जोट दै तब अरिन कोँ अब कोट-ओट कहाँ रही ॥६४॥

अब धन्य है हिंमतबहादुर की जु हिंमत कोँ लखौ।
जिन तीस कोस कराल भूमि मझाइकै रन अभिलखौ।
यह कस्त करि आए यहाँ कै रन हथ्यारन भेटबी।
रनधीर बीर पमार सोँ लरि सुजस-बृंद समेटबी ॥६५॥

तातेँ सलाह यही करौ चलि कछुक आगे लीजिये।
हरषित हथ्यारन सोँ जु मिलि करि रन हकाहक कीजिये।
जिसकोँ बिजय प्रभु देइ सो इत अनायासहि पावही।
धरि कोट संगर मैँ जु भिरिकै कुल कलंक चढ़ावही ॥६६॥

जिनकी बदी है मीच अब तिनको न इत-उत बचहिगी।
जिनकी नहीँ है बिधि रची तिनके न तन कोँ तचहिगी।
जग मैँ जु जन्म बिबाह जीवन मरन रिन धन धाम ये।
जिहि कोँ जहाँ लिखि दियो प्रभु तिहि कोँ तुरत तिहि ठाम ये ॥६७॥

चढ़ि जाइ मेरु कुबेर-घर गढ़ लंकहू मैँ दबि रहै।
फिर तल रसातल बितल पैठि पताल फोरि अमी लहै।
भेटै धनंतर-से जु बैद सु योँ अनेक बिधैँ करै।
पर काल है जिहि को जहाँ तिहि को तहाँ तेँ नहिँ टरै ॥६८॥

गिरि परहि अगिन अपार कूदहि जहर-कहर-दखाउ मैँ।
रन जाइ खाइ हलाहलहिँ परि जाइ केहरि-दाउ मैँ।
चढ़ि जाइ हिम गिरि हाँकिकै लपटाइ आसुर अजब सोँ।
ततकाल जो निज काल नहिँ तौ बचहि एते गजब सोँ ॥६९॥

यह तत्वसार बिचारि मन अब झारि समसेरहिँ कढ़ौ।
रिपु-सार-धार अपार पैरि सु रारि करि जग जस मढ़ौ।
निज भाग तेँ रन-समय या जब कबहुँ छत्रिय पावहीँ।
तिहि मैँ जु कादरता करहिँ ते जगत जन्म नसावहीँ ॥१००॥

यह धर्म छत्रिन को प्रमान पुरान-बेद सदा कहैँ।
द्विज-गऊ पालहिँ, रिपु उसालहिँ सस्त्र-घावहिँ तन सहैँ।
जग जुवा जुद्धहु को कबहुँ सपनेहु नहिँ नाहीँ करैँ।
ऐसे परम रजपूत कोँ रन गिरत बारंगन बरैँ ॥१०१॥

अब रन तजे जौ हूजिये इत अजर-असर जहान मैँ।
तौ छोड़ि हथियारन धरहिँ कह कढ़त है घमसान मैँ।
जग एक दिन मरने मुकर्रर जनम पाइ सुनीजिये।
तातेँ गलिन दूर गालनहूँ जस बृथा मलिन न कीजिये ॥१०२॥

निज आयु रच्छा करत तन की आयु मर्म बचावही।
निज आयु सिंह-सपेट तेँ सु बचाइ घर कोँ ल्यावही।
निज आयु अन्न अमोघ देत यहै बिचारत गाज़िये।
परिये न क़बहूँ दीन अरिहिँ न कबहुँ रन तेँ भाजिये ॥१०३॥

रन-धीर छत्रिय करोँ जुरन मैँ दुहूँ भाँतिन है भली।
जीतै जु अरि-गन जाइ तौ भोगै धरनि फूली-फली।
जूझै जु सुद्ध त्रिसुद्ध तौ स्वर्गपवर्गहिँ पावही।
तहँ करै मन-माने बिहार न कबहुँ इहि जग आवही ॥१०४॥

ये दो पुरुष जग मैँ जु सूरज को सुमंडल भेदहीँ।
जे जोग-जुत आजनम तेँ नहिँ कबहुँ ल्यावत खेदहीँ।
अरु जे हिये हर्षित लरत रन मैँ जु सन्मुख जूझहीँ।
इन के जु गुन गाए सुने ते परमतत्वहिँ बूझहीँ ॥१०५॥

कहु कौन चिंता है नरन रन मैँ जु तन कोँ परिहरैँ।
....

पर तऊ कासी के मरन तेँ रन-मरन सु बिसेष है।
काहे कि रन मैँ मरन तेँ जस जगजगात अलेख है ॥१०६॥

जिनके परत पग अग्र कोँ अरि की जु सेना देखतैँ।
तिनको सु पग-पग पर मिलत फल अधिक जज्ञ असेष तेँ।
जिनकी जु घाइन तेँ घुमड़ि रन रुधिर की धारा गिरैँ।
तिनकी तरैँ पैरी पचास सुबास तेँ फिर नहिँ फिरैँ ॥१०७॥

---

[१०६] दूसरी पंक्ति हस्तलेख मैँ नहीँ था। दीन जी ने उसकी पूर्ति योँ कर दी है—
जब मरन कासी-धाम-सम रन-मरन कबिजन अनुहरैँ।

कहँ हैं जु रघु, रावन कहाँ कहँ राम, कहँ हरिचंद हैं।
कहँ पृथु भगीरथ मानधाता कहँ करन कुरुनंद हैं।
कहँ पंच-पंडव, द्रोन दुरजोधन जयद्रथ कहँ छए।
इनके जु जुद्ध प्रसिद्ध जस जग देखियतु है रहि गए ॥१०८॥

पटि जात बापी कूप सर कटि जात घन बन बाग है।
....
मिटि जात तत धन एक दिन पुर-नगर हू दहि जात है।
पर या जगत मैं अमर द्वै जस औ' कुजस रहि जात है ॥१०९॥

तातैं कुजस की गैल मैं पग भूलि कबहुँ न धारिये।
यह गैल है बिन मैल जस की हँसि हथ्यारन झारिये।
रजपूत की संपति यहै पति सदा अपनी राखिये।
पति गए पतिनी आदरै नहिं और की कह भाखिये ॥११०॥

यह करि बिचार पमार अर्जुन सिंह हिय हर्षित भयौ।
सनमान करि द्विज-बरन को तिन दान गौवन को दियौ।
पहिरे गरे गुटिका कवच रचि भागवत गीतान के।
करि पान गंगा-जल बिमल फिरि ठठे ठठ घमसान के ॥१११॥

गुरदा बगुरदा छुरी जमधर दम तमंचे कटि कसे।
बर बिबिध तीरन सौं भरे तहँ द्वै तुनीर महा लसे।
फिरि द्वै कमानैं बाँधि करि किरवान करि कर मैं लई।
बहु बिधि बँदूखनि के जु बृंदन की अमित आभा भई ॥११२॥

छोटे-बड़े हथियार सब धरि निकट हौदा मैं लए।
दल देखि भूप अनूप को अति प्रबल फल फूलत भए।
मुच्छा उमैठत उमड़ि ऐंठत कठिन कर-कुहुँचान कौं।
हँसि हूलि हाथी लिये साथी चल्यौ इमि घमसान कौं ॥११३॥

तहँ होत पसर पमार की बेकसर दिग्गज डगि उठे।
धँसि-धँसि धरनि धर के धरैया कहत जमकातर रुठे।
उठि धूरि-धारा धरनि तैं नभ धाइ ध्रुव धामै गई।
इक एक-एकन कौं न देखैं इमि अँध्यारी छिति छई ॥११४॥

[१०९] दूसरा चरण हस्तलेख में नहीं था। 'दीन' जी की पूर्ति यों है—
ढहि जात धाम 'रु धौरहर रहि जात कछु न अदाग है।

अति रन-अडोल पमार की वह गोल गोला-सी चली।
बर बान तीर तुपक्क तोपन की भई जु घलाघली।
दल तहाँ प्रलय-पयोधि-सो उमड़्यौ अपार रुकै नहीं।
जिहि के सु कोह-भरी कितेकौ लोक लहरैं ऊमहीं ॥११५॥

लखि यौं अवाई बीर की रिपु-भीर मैं खलभल भई।
'आयौ पमार, पमार आयौ' यहै धुनि छिन इक छई।
रन-धीर बीर अनूप गिरि तकि ताहि हर्षित हिय भयौ।
करकरे बीरनि संग लै उमड़्यौ सुडीलनि तहँ तयौ ॥११६॥

फरके उदंड उमंडिकै भुजदंड दोऊ लरन कौं।
तहँ फूलि तन तिगुनो भयौ बढ़ि चल्यौ जब रन करन कौं।
तिन चित चढ़्यौ अति चाउ चौगुन सौगुनो साहस भयौ।
लखगुनो लाल पर्यौ सु देखत लोह कौं लपकत थयौ ॥११७॥

तहँ अति ललाई उमगि छाई दृगन माँझ दिखात है।
जनु बीर रस तन पूरि करि अँखियान ह्वै उफनात है।
तन तेज बहु अरु ताउ तीछन चाउ जिहिं सोभन सनो।
हिंमतबहादुर को जु तनु रन मैं सु देखत ही बनो ॥११८॥

तहँ जंत्र-मंत्र अनेक दुर्गा भागवत गीतान के।
गुटिका गरे बिच सोभहीं जे करत जय घमसान के।
कर सैहथी द्वै खग्ग खासे कठिन कंमर मैं लसे।
जमधर छुरा सु बिलाइती जिनकौं बिलोकत जम त्रसैं ॥११९॥

सर-भरे तरकस अरु कमान महान घोड़े सौं लगी।
तिहि समय की वह आन-सान दिसा-दिसान-बिषै जगी।
तहँ हरषि हर-हर हरषि हर-हर हरषि हर-हर करि पिल्यौ।
वह कहनि हर-हर की सु धुनि सुनि जिगर सत्रुन को हिल्यौ ॥१२०॥

तब मानधाता मरद अति सुत राय सबसुखराय को।
रजधान को धन धनी धीर सु भक्त नृप के पाय को।
जग भानु कायथ-कुल-कमल को भोज भिच्छुक-करम को।
सिरमौर बीरन को बिदित सरदार सागर सरम को ॥१२१॥

दिल खोल हरषि हरौल ह्वै यह बोल भाषत तहँ ठयौ।
हमरे बिलोकत नृपति कौं इतनो परिश्रम है भयौ।

(हरिगीतिका)

करि खग्ग जग्ग उदग्ग अति अरि-बग्ग आए उमड़िकै।
गज-घटन माहिँ महाबली घालत हथ्यारनि घुमड़िकै।
पृथु-रित्त नित्त सुबित्त दै जग जित्ति कित्ति अनूप की।
बर बरनिये बिरदावली हिंमतबहादुर भूप की ॥१८१॥

(त्रिभंगी)

तहँ दुहुँ दल उमड़े घन-सम घुमड़े झुकि-झुकि झुमड़े जोर-भरे।
तकि तबल तमंके हिम्मत हंके बीर बमंके रन उभरे।
बोलत रन करखा बाढ़त हरषा बाननि बरषा होन लगी।
उलछारत सेलैँ अरि-गन ठेलैँ सीननि पेलैँ रारि जगी ॥१८२

बंदी-जन बुल्ले रोसन खुल्ले डग-डग डुल्ले कादर हैँ।
धौँसा-धुनि गज्जे दुहुँ दिसि बज्जे सुनि धुनि लज्जे बादर हैँ।
नीसान सु फहरैँ इत-उत छहरैँ पावक-लहरैँ-सी लगतीँ।
छुवती नकि नाका मनहु सलाका धुजा पताका नभजगतीँ ॥१८३

कढ़ि कोटनवारे बीर हँकारे न्यारे-न्यारे अभिरि परे।
किरवाननि झारैँ सुभट बिदारैँ नेकु न हारैँ रोष-भरे।
कानन लौँ तानैँ गहि कंमानैँ अरिन निसानैँ सिर घालैँ।
सूधे अति पैठैँ मुच्छनि ऐठैँ भुजनि उमैठैँ गहि ढालैँ ॥१८४

अत्रन की मूकैँ घालि न चूकैँ दै-दै कूकैँ कूदि परे।
गहि गरदन पटकैँ नेकु न भटकैँ झुकि-झुकि झटकैँ उमँग-भरे।
रन करत अड़ंगे सुभट उमंगे बैरिन बंगे करि झपटैँ।
सीसन की टक्कर लेत उटक्कर घालत छक्कर लरि लपटैँ ॥१८५

तहँ हत्था-हत्थी मत्था-मत्थी लत्था-पत्थी माचि रही।
काटैँ कर कट-कट बिकट सुभट-भट का सोँ खटपट जाति कही।
गहि कठिन कटारी पेलत न्यारी रुधिर-पनारी बमकि बहैँ।
खंजर खिन खनकैँ ठेलत ठनकैँ तन सनि-सनिकै हिलगि रहैँ ॥१८६

गहि-गहि पिसकब्जैँ मरमनि गब्जैँ तकि-तकि नब्जैँ काटत हैँ।
कंमर तैँ छूरे काटत पूरे रिपु-तन रूरे काटत हैँ।
करि धक्का-धक्की हक्का-हक्की ढक्का-ढक्की मुदित मची।
घनघोर घुमंडी रारि उमंडी किलकत चंडी निरखि नची ॥१८७

थकै गहि भाले करि मुख लाले सुभट उताले घालत हैँ।
तोरत रिपु-ताले आले-आले रुधिर पनाले चालत हैँ।
झारत असि जुर जे बीरनि-उर जे पुरजे-पुरजे कोटि करैँ।
हथियारनि सूटैँ नेकु न छूटैँ खल-दल कूटैँ लपटि लरैँ ॥१८८

तहँ ढुक्का-ढुक्की मुक्का-मुक्की डुक्का-डुक्की होन लगी।
रन इक्का-इक्की झिक्का-झिक्की फिक्का-फिक्की जोर लगी।
काटत चिलता हैँ इमि असि बाहैँ तिनहिँ सराहैँ बीर बड़े।
टूटैँ कटि झिलमैँ रिपु रन बिलमैँ सोचत दिल मैँ खड़े-खड़े ॥१८९

ढालन के ढक्के लागत पक्के इत-उत थक्के थरकत हैँ।
इक-इक्कनि टक्के बँधे झमक्के तननि तमक्के तरकत हैँ।
ललकत फिरि लपटे छत्तिन छपटे करि अरि चपटे पेरत हैँ।
भट भुजनि उखारत छिति पर डारत हँसि हुड़कारत हेरत हैँ ॥१९०

ठोँकत भुजदंडनि उमड़ि उदंडनि प्रबल प्रचंडनि चाउ-भरे।
करि खल-दल खंडन बैरि बिहंडन नौऊ खंडन सुजस करे।
दस्ताने करि-करि धीरज धरि-धरि जुद्ध उभरि भरि हंकत हैँ।
पैठत दुरदन मैँ रोषित रन मैँ नेकु न मन मैँ संकत हैँ ॥१९१

निकसीँ तहँ खग्गैँ उमड़ि उमग्गैँ जगमग जग्गैँ दुहुँ दल मैँ।
भाँतिन-भाँतिन की बहु जातिन की अरि-पाँतिन की करि कलमैँ।
तहँ कढ़ीँ मगरबी अरि-गन चरबी चापट करबी सी काटैँ।
जगि जोर जुनब्बैँ फहरत फब्बैँ सुंडनि गब्बैँ फर फाटैँ ॥१९२

बिज्जुल-सी चमकैँ धाइन धमकैँ तीखन तमकैँ बंदरकी।
बंदरी सु खग्गैँ जगमग जग्गैँ लपकत लग्गैँ नहिँ बरकी।
सोहैँ सुभ सुरती घलत न मुरती रन मैँ फुरती बीरन कौँ।
लीलम तरवारैँ झुकि-झुकि झारैँ तकि-तकि मारैँ धीरन कौँ ॥१९३

गजकुंभ बिदारैँ सु लहरदारैँ लहरनि धारैँ बिधि-बिधि की।
लखि लालूवारैँ रिपु-गन हारैँ मोल बिचारैँ नव निधि की।
तहँ खुरासानी जग की जानी घलैँ कृपानी चकचौँधैँ।
निव्वाज-हु-खानी दलनिधिखानी बिज्जु-समानी रन कौँधैँ ॥१९४

असिबर नादौटैँ घलत न लौटैँ मुंडनि मोटैँ काटि करैँ।
बर मानासाहीँ भटनि दुबाहीँ झिलमनि बाहीँ नहीँ झरैँ।

---

[१९०] चपटे (दीन); छपटे।

सुभ समर सिरोही जगमग जोही निकसत सोही नागिन सी।
कर-करी सुकत्ती तीखन तत्ती हनि रिपु छत्ती नहिँ बिनसी ॥१९५

गज्जत गज दुरदा सहित बगुरदा गालिब गुरदा देखि परे।
तुरकन के तेगा तोरन तेगा सकल सुबेगा रुधिर-भरे।
जगजगी जिहाजी मंजुल माजी सरँन साजी सोभि रहीँ।
दिपती दरियाई दोनौँ घाई भटनि चलाई अति उमहीँ ॥१९६

तहँ सु अलेमानी और न सानी सहित निसानी घलन लगीँ।
सु जुनेद-हु-खानी पूरित पानी दिपति दिखानी जगा-जगीँ।
दोनौँ दिसि निसरी लखत न बिसरी मंजुल मिसरी तरवारैँ।
तन तोरन रुपती गालिब गुपती झक-झक झुपती झुकि झारैँ ॥१९७

हेरी जु हलब्बी सुंडनि गब्बी सीस हलब्बी सी चमकैँ।
तहँ करत झपट्टे बीर सुभट्टे चहुँ दिसि पट्टे घम-घमकैँ।
घालत अति चाँडे गहि-गहि गाँडे रिपु-सिर भाँडे से जु हरैँ।
करि-करि चित चोपैँ रन पग रोपैँ धरि धरि धोपैँ धूम करैँ ॥१९८

जिनने अति भारे बखतर फारे दलनि दुधारे बहु निकसे।
तहँ सु बरदमाली खड्ग पिहानी हर बरदानी हेरि हँसे।
चरबी जिन चाबी दबहिँ न दाबी दिपति दुताबी देखि परैँ।
मुरि मुरत कहूँ ना उत्तम ऊना सब तेँ दूना काट करैँ ॥१९९

छीलत जे काँचैँ रन मैँ नाचैँ सुदम तमाचैँ ओप धरैँ।
रंजित रन-भूमी सु खड्ग रूमी रिपु-सिर तूमी सी कतरैँ।
असिबर अँगरेजैँ घलि घलि तेजैँ अरिगन भेजैँ सुरपुर कौँ।
लखि फरुकसाहीँ बीरन बाहीँ खल भजि जाहीँ दुर दुर कौँ ॥२००

रिपु झलनि झकोरैँ मुख नहिँ मोरैँ बखतर तोरैँ तकब्बरी।
.... ।

इमि बहु तरवारैँ काढ़ि अपारैँ सुचित बिचारैँ नहिँ आवैँ।
तिनके बहु खनके झिलमनि झनके ठनकत ठनके तन तावैँ ॥२०१

बकचकैँ चलावैँ दुहुँ दिसि धावैँ हयनि कुदावैँ फूल-भरे।
गजदंत उपाटैँ हौदा काटैँ बाँधि सपाटैँ अति उभरे।

---

[२०१] दूसरा चरण हस्तलेख मैं नहीँ है। उसकी पूर्ति 'दीन' जी ने यौँ कर दी है—

इक एकनि मारैँ धरि ललकारैँ गहि तरवारैँ अकब्बरी।

हत्थिन सौँ हत्थी मत्था मत्थी रारि अकत्थी करन लगे।
जंजीरनि घालैँ सुंड उछालैँ बाँधत फालैँ फर उमगे ॥२०२

गहि गहि हय झटकैँ दिसि-दिसि फटकैँ भू पर पटकैँ नहिँ लटकैँ।
पायनि सौँ पीसैँ अरिगन मीसैँ जम से दीसैँ नहिँ भटकैँ।
प्रति गजनि उठेलैँ दंतनि ठेलैँ ह्वै भट-भेलैँ जोर करैँ।
जुत्थन सौँ जूटैँ नेकु न हूटैँ फिरि-फिरि छूटैँ फेरि लरैँ ॥२०३

करि-करि इमि टक्कर हटत न थक्कर तन तकि तक्कर तोरत हैँ।
मारे रन गुंडनि भाले भुंडनि तऊ न सुंडनि मोरत हैँ।
इमि कुंजर लपटैँ दुहुँ दल-दपटैँ झुकि-झुकि झपटैँ झूमत हैँ।
अरि-पटल पटा-से फारत खासे सु बन-घटा-से घूमत हैँ ॥२०४

तहँ अर्जुन बंका करि-करि हंका दुरद निसंका हूलत हैँ।
बैठो जु किलाएँ मुच्छनि ताएँ रन-छबि छाएँ फूलत हैँ।
झारत हथियारन मारत बारन तन तरवारन लगत हँसैँ।
पैरत भालन कौँ सर-जालन कौँ असि घालन कौँ धमकि धँसैँ ॥२०५

तहँ मची हकाहक भई जकाजक छिनक थकाथक होइ रही।
तब नृप अनूप गिरि सुभट सिंधु तिरि अर्जुन सौँ भिरि खड्ग गही।
हय दाबि कन्हैया सुमिरि कन्हैया सु गज कन्हैया पर पहुँचौ।
झारत तरवारै तकि-तकि मारै प्रबल पमारै गहि कहुँचौ ॥२०६

पटक्यौ गज पर तैँ उमड़ि उभर तैँ अरि-सिर धर तैँ काटि लियौ।
रिपु-रुंड धरा को अरपत ताको हरहि हरा को मुंड दियौ।
लहि अर्जुन मत्था गिरिजा-नत्था अमित अकत्था नचत भयौ।
डम डमरु बजावै बिरदनि गावै भूत नचावै छबिन छयौ ॥२०७

किल किलकत चंडी लहि निज खंडी उमड़ि उमंडी हरषति है।
सँग लै बैतालनि दै-दै तालनि मज्जा-जालनि करषति है।
जुग्गिननि जमातीँ हिय हरषातीँ खद-खद-खातीँ माँसन कौँ।
रुधिरन सौँ भरि-भरि खप्पर धरि-धरि नचतीँ करि-करि हासन कौँ ॥२०८

बज्जत जय-डंका गज्जत बंका भज्जत लंका लौँ अरि गे।
मन मानि अतंका करि सत संका सिंधु सपंका तरि-तरि गे।
नृप करि इमि रारनि लरि तरवारनि मारि पवारनि फते लई।
लूटे बहु हय-गय देत खलनि भय जग मैँ जय-जय सुधुनि भई ॥२०९

Padmakar, *HimmatBahadurVirdavali*
Dalpat Rajpurohit, Allison Busch, & William Pinch [most recent meeting, 18 March 2011]

Chhappay

Victory to the moon-like Lord who makes the ocean of Braj swell with bliss.
Victory to the Lord [Nandanand] who eases the sadness and turmoil of the world.
Victory to the punisher of the demons and monsters [Kesi, Kans, Vacchh, Vak].
Victory to the mountain-lifter who demolished the pride of Indra.
Padmakar says, all praise to that famous friend of Arjuna in war.
Give everlasting victory, O Jewel of the Yaduvamsh, to His Royal Majesty Anup Giri, King. 1

Always give victory, O Jewel of the Yaduvamsh, to the ornament of the world.
[Give victory], Lord, to the prince of Rajindra Giri, the indivisible abode of strength.
Like Prithu, (who) always bestowed much wealth and won the world, his fame spread.
The *virdavali* of King Himmat Bahadur is described (herein). 2

Hakal Chhand

Himmat Bahadur is King-Lord, he is the brilliant[1] form of Siva.
His heart is generous and compassionate, to his host of enemies he is death. 3

He is as refined as Amaresh,[2] he supports the weight of the world like Bhujangesh,[3]
Like Mahesh[4] his heart is joyous, like Ganesh his essence is wisdom. 4

To his host of dark enemies he is like the sun[5], he is the forest fire that burns their cities.
He comforts the oppressed of the world, his body is long-armed[6] and vast. 5

His wealth and firmness are the support of *dharma*, he is the silk that protects Hindu modesty.
His form is lustrous like Manoj,[7] he is like Bhoj[8] when doling out worldly pleasures.[9] 6

He is placid and deep like the ocean, (but) in battle he becomes Rudra.[10]
He is expert in the 64 arts,[11] he is subordinate (only) to the gods. 7

---

[1] Anup, a play on Anupgiri's name. Another reading of this phrase is: "Anup has the unparalleled beauty of Siva." One might conclude that, as with Abu'l Fazl's (and Akbar's) purposefully ambiguous usage of the slogan "Allah-u Akbar" at the Mughal court, Padmakar (and Anupgiri) played with the idea of Anupgiri's relationship to the divine.
[2] Indra.
[3] The Lord of the Serpents, upon whose hood the world rests.
[4] Siva.
[5] Or: "To his host of enemies he is like the sun to darkness."
[6] "Maha bahu", long-armed, is a common way of referring to Krishna.
[7] A name of Kamdev, the god of love.
[8] King of Malwa in the eleventh century, famed for his liberality and wisdom.
[9] Bhagvandin notes here that he can't understand the phrase "detanibhoj" and adds that in verse 4 Padmakar compares AG to Mahesh (Siva) using similar language.
[10] Siva.

His spoken word is unbreakable, the horses and elephants he gives are priceless.
In truthfulness he is like Harichand,[12] he always showers happiness on his subjects. 8

He is death to those who cause suffering, he has woven his web of fame across the world.
He is the leading light of his clan, he is the protector of the earth. 9

He is a sacred ship (sailing) on the ocean of Kali Yuga, his work is to fulfill the wishes of all.[13]
To poets he is like the sun to the lotus, he is a storehouse of truth and righteousness. 10

He gladdens those who are wise, he saddens the faces of the wicked.
The one who has taken brilliant[14] form in the world, as a king he is embodies the nine rasas.[15] 11

His women find him irresistible, his enemies find him indomitable.
(When) he sees the helpless he is compassionate, when slaughtering[16] the vile he is disgusting. 12

With his close friends[17] he is fun-loving, with his opponents he inspires fear.
He is remarkable on horseback, when he cuts heads off he is inflamed. 13

He chants Siva-bhajans with skill and grace, there is no one else like him.
Himmat Bahadur is a powerful king, whose army destroys his enemies. 14

He set out[18] on a world conquest, he wrought havoc across the land.
He conquered his Gujar foes[19], (then) returned to Bundelkhand. 15

First he gave Datiya a drubbing, (and) he took chauth[20] tax.

---

[11] The canonical arts of cultured living, most famously described in the *Kama Sutra*, including dance, painting, lovemaking, singing, dressing, adornment, etc.

[12] Harishchandra, an ancient king renowned for keeping his word at the cost of his family's fortune.

[13] Indeed, Anupgiri's reputation was that of a "faithless" turncoat, willing to work both sides of every deal and betray even his closest friends. Apropos of this, the first part of the line recalls a saying about Anupgiri recorded by Thomas Brooke of Banaras, on 4 June 1804 (the very day after Anupgiri died), that "he always kept a foot in different boats, ready to abandon the one that was sinking."

[14] "Anup", or brilliant. The verse could also be read as, Anup who has taken form [become an avatar] in the world."

[15] The next three verses enumerate these nine rasas, or moods-qualities.

[16] "katal" is used here for slaughtering, from Arabic.

[17] Bhagvandin notes that "khilavatin", close friends, is from Persian.

[18] Bhagvandin notes that "mahum", a colloquial form of "muhimm", from the Persian, meaning to depart or set out.

[19] Bhagvandin notes that "galim", a corruption of the Persian "gamin", meaning foe or enemy. He opines that this indicates that Anupgiri conquered Gujarat before coming to Bundelkhand, but this is clearly incorrect. More likely it refers to his operations in the region around Delhi, where the Gujjars are a powerful local clan.

The he came to the country of King Chhatsal,[21] (and) he conquered his powerful web of enemies. 16

(In) the kingdom that Arjun ruled, there was no fear of the (Mughal) emperor.
He (Anupgiri) came and did much plundering, did lots of killing and was chased away.[22] 17

Anupgiri became enraged with him (Arjun), he came and stood his ground.
He conquered the entire country, then divided it amongst his army. 18

He slowly came near to Arjun, his (royal?) army vast and lumbering.[23]
He encamped by the River Ken, where he quickly (prepared for?) battle. 19

He called the astrologer, and asked with bowed head, name an auspicious date.
Now speak, when might we fight? Say a suitable day, then we will wage war. 20

Hearing this order by the maharajah, the royal astrologer heart was gladdened.
The well-named Sarup Sinha spoke words to ensure victory. 21

He perused all the astral treatises, (and) announced the auspicious date settled upon.
Listen, (take) Samvat 1800, and count 49 more. 22

The twelfth day of the dark half of Baisakh, make a note of Wednesday.
This is a good day for war, it is a day for young men, warriors, and the best of kings. 23

This (fort at) Ajaigarh is weak, where the enemy is ensconced.
Hearing this good day news was pleasing, (and) they beat the kettledrum to honor Siva. 24

They sounded the conch, the braves all got ready.
They beat the kettledrum, the enemy heard it and hid themselves all over. 25

The powerful army prepared itself, they set out in a hurry roaring.
(Amongst) the steadfast Pamar[24] warriors, Arjun planted himself in anger. 26

The kshatriyas that gathered in a group, would never turn away from battle.
The fourteen noble Chauhans, terrifying in anger and energy. 27

---

[20] Bhagvandin notes here that the word for "chauth" here is actually "khandi", a Bundelkhandi term. Also, Padmakar's term for tax is rendered as "suman mani", but it should be "su manmani".
[21] Chhatrasal, the major late seventeenth, early eighteenth-century Bundela ruler who, with the Maratha Baji Rao I, managed break Mughal dominance in Bundelkhand.
[22] The verse is ambiguous here, as it could mean "he did lots of killing and scattering (of his enemies)." However, given that Anupgiri was defeated by Hindupat in 1762 and expelled from Bundelkhand, it seems more likely that Padmakar is making polite reference to that earlier event. See J. Sarkar, pp. 160-64, who cites the HBV and Imad especially.
[23] Unsure about this one.
[24] Vulgar form of "Panwar", a Rajput clan.

He resolved that here the weapons would join in battle,
(that) he would amass glory in war against the redoubtable Pamar braves. 95

Therefore take heed, go ahead and move forward a bit.
Take up your weapons with joy, enter the fray and do bloody battle.
Victory will be gained easily here to the warriors whom God favors.
If you stay hiding in the fort, then you will cast a stain on your clan lineage. 96

For whomsoever death is slated, his death cannot be averted.
He whose death is not foretold (then) by Brahma, his body cannot even be harmed.
In the world, birth, marriage, life, death, debt, riches, dwelling, these [things]
Whatever wherever they are written, God has fore-ordained to occur right then and there. 97

Whether you are granted a home in heaven, or are dumped down in Lanka's fort,
If you break through the many worlds, you will receive the nectar of immortality.
[Or] you will meet the heavenly physician or some other expert in knowledge and rites.
But death cannot be averted no matter which way you turn, this way or that. 98

Whether you fall into a vast pit of flame or leap into a deep ocean of poison,
Whether you go to war, consume a powerful dose, or fall into the clutches of a lion,
Whether you are grabbed by a strange demon and hauled off up into the Himalayas,
Nevertheless, until your own time has come, you will be spared disaster.[54] 99

With these key thoughts in mind, now grasp your deadly[55] weapons.
Thrust your broadsword blades into (your) battlefield foes, spread your fame far and wide.
Only rarely does the opportunity of war come to a kshatriya.
Will you squander this, your worldly birthright, with your cowardice? 100

This is the dharma of the kshatriyas, according to the eternal proof of the Vedas and Puranas.
Protecting brahmans and cows, removing enemies, and enduring bodily sword blows.
In this world, a soldier never says no to war, not even in his dreams.
When these prime Rajputs fall in battle, they have their pick of heavenly brides. 101

When you depart the battlefield [in death], [then] you become immortal here in the world.
So if you renounce your weapon, what will you wield in battle?
Listen, once you gain birth into this world, it is a given that you will die.
So don't pointlessly sully your name across all the highways and byways. 102

Sure, protect your own bodily longevity, but never at the expense of your legacy.
Bring your true life[56] home safe from the lion's pounce.

---

[53] Sixty miles.
[54] In other words, despite all these horrors, you will not die till your time has come. 'gazab' (from Arabic) = disaster.
[55] Deadly is the translation of 'jhari', from jhalna, to weld.
[56] 'nij aayu' = 'one's lifespan' acc. to MacGregor; translated here as "true life" and in 103.1 as "legacy".

Your true life is the unsullied fame that sustains you, keep this in mind as you attack.
Never be taken alive by your enemy and never run from battle. 103

Among the collective of battle-hardened kshatriyas, both destinies are appropriate.
If you are victorious over the enemy, then enjoy fully the fruits of the world.
If you die, you will be freed from the three types of pure fighting.
Up there you will enjoy unimaginable pleasures and never have to return to this world. 104

There are two types of men in this world who go on to pierce the beautiful disc of the sun.
He who has been following the path of yoga from birth and fights with calm indifference.
And he whose passion is roused by the battle and fights to the death then and there.
Those who hear the ballad of these two types (of men) understand the highest truth. 105

What worries does the man have, who abandons his body on the field of war?
When you die in battle it's like dying at sacred Kashi.[57]
In fact, dying in battle is even better than dying at Kashi,
Because there is a special, unfathomable brilliance to the fame of dying in battle. 106

He who puts his foot forward first in the face of the foe,
To him will accrue at every step greater rewards in sacrifice.
From whomsoever the blood flows gushing upon the battlefield,
To his heirs, fifty generations hence, paradise will be assured without return (to earth). 107

Where is Raghu, where is Ravan, what of Ram, wherefore Harichand?
What has become of Prithu, Bhagirath, Mandhata, where is Karunand?
What has happened to the five Pandavas, where are Drona, Duryodhana, Jayadratha?
All that remains of them is their glory in battle. 108

Over time all wells and tanks get filled in (and) dense forests and gardens get cut down.
Palaces and splendid homes all collapse, nothing escapes decay.
One day your body and wealth will all evaporate, even cities and towns will burn to the ground.
In this world, only two things remain: fame and ignominy. 109

Don't set foot down the road of disrepute, even when you forget to be careful not to.
This, the path of glory, is spotless, so take up your weapons with joy.
Honor -- this is the wealth of the Rajputs -- always protect your honor.
If you lose your honor, not even your wife will respect you, to say nothing of others. 110

The Pamars discussed these ideas, and (hearing them) Arjun Singh was fully pleased.
He rewarded the best of the brahmans (by) bestowing gifts of cows.
(Brahmans) gave him an amulet containing the Bhagavad Gita to wear around his neck.
(They) gave him pure Ganga water (to drink), and he resolved to wage a fierce battle. 111

He strapped on an array of guns, blades, sabers, and pistols.
(He wore) two great shining quivers bristling with mighty arrows.

---

[57] Bhagvandin notes that the ms. was missing this line, so he deduced it using his own intuition.

Chhappay[82]

Fine warriors in battle, hardened by the three-fold discipline,[83] fired up and enraged.
Each reflecting on a past enmity, rushes and crushes[84] the enemy army.
They called out laughing, saw them and were joyful, fearless.
They clanged angrily, dashed forth, fought hand to hand, and taunted each other.
Padmakar has described it thus, both sides became enraged and bristled with anger.
When King of Kings Anupgiri Lord did battle with his sword, he broadcast the seeds of his fame.
180

Hari Gitika

Having propitiated his blade, [he] rushed forward to face the advancing enemy.
The powerful one[85] swirled [into the fray] and stabbed the elephants to the quick.
Like Prithu, (who) always bestowed much wealth and won the world, his fame spread.
The *virdavali* of King Himmat Bahadur is described (herein).[86] 181

Chand Tribhangi

The two armies surged, gathered like storm clouds, [and] angrily gained strength.
Hearing the sound of the drum, [and] driven by their courage, the braves swelled into battle.
Singing a martial song, their joy increased, [and] arrows began to fly.
Launching spears, they repelled the enemy, chests were pierced [and] the battle awoke. 182

[As] the bards declaim, anger is unleashed, [and] cowards quake.
The roaring of the kettledrum, thundering from both sides, puts the clouds to shame.
The flags are a'flapping, a'slapping here and there, they flicker like fire.
Reaching out to touch the sky, as if lightning, the banners and flags light up the heavens. 183

Those driven out from the fort, fanned out in many directions, and engaged in combat.
They clashed their swords, sliced [into] each other, giving no quarter [they were] full of anger.
[To their] ears [they] stretched the bowstrings,[87] targeted the enemy and pierced [their] heads.
Penetrated straight, moustaches bristled, arms flexed, [they] grasped their shields. 184

The firing of the weapons, never failed to strike, they gave yell and fell upon one another.
They grabbed throats and dashed down, never wavering, they sprang and leapt forward enraged.
They took one another down, the excited warriors, they maimed and mutilated the enemy.
Heads knocking, bodies strewn about wildly, they grappled, rolled, and wrestled together. 185

---

[82] AB: These kinds of verse tend to use archaic language/references.
[83] 'trishudh shudh', acc. to Mishra's vocabulary, refers to the three 'tapos' or heat-producing austerities. Hence 'fired up'.
[84] Check 'rudhahi', which should really mean 'surround'.
[85] 'Mahavali'
[86] This is a refrain verse—see vv. 2, 46, 77.
[87] The second section of this 'tribhangi' contains a sense of grasping the bow, 'gahi kamanai'. Thus 'bowstring' is implied.

There was a great tumult, fierce clashing, then suddenly Arjun was getting tuckered out.
Then King Anupgiri crossed over the great ocean army and challenged Arjun, sword in hand.
Urging his horse Kanhaiya, he remembered God,[116] and attacked at the elephant's shoulder.
Waving his sword, taking aim and striking, he grabbed the forearm of the mighty Pamar. 206

He knocked him off the elephant, rushed forward, and grabbed the enemy's head and cut it off.
He offered his foe's body to the Earth, and took its head and offered it to Shakti.[117]
Taking Arjun's head, Parvati[118] strung it,[119] and began to dance indescribably.
She's beating the damru drum, singing the praises, she sets the spirits a'dancing gloriously. 207

Chandi screeched, she took her piece, she swelled and radiated [apparated?] with pleasure.
She brought her demon-girl-gang, they clapped to the beat, cracked-chewed the bone marrow.
The gathering of yoginis, [full of] grim delight, gorged themselves on the meat.
Filling the skull bowls with blood, they reveled and danced about. 208

The victory drum was sounded, and roared marvelously, and the enemy fled to Lanka.
Their hearts full of fear, they were beyond terrified, they crossed the uncrossable ocean.
The King fought thus with his weapons, he killed the Pamar and took victory.
The spoils of war[120] [were his], the enemy cowed, and the world rang with cries of victory. 209

Chhappay

Cries of victory and congratulatory blessings, ornamented the horizons of the Earth.
The banners of glory fluttered, the kettledrum was pounded with glorious victory.
The loyal warriors were decorated with countless wounds,
as if the lovely spring had come and made the splendid Kinsuk tree flower.[121]
This is how the rapturous battle was waged, so says Padmakar.
The Jewel among Kings, Protector of the Earth, Anup Giri, obtained great victory and infinite happiness. 210

He obtained glorious victory and bountiful happiness, his heart filled with sweet delight.
May Kali-Kapali[122] protect the King always and forever.
Like Prithu, (who) always bestowed much wealth and won the world, his fame spread.
The *virdavali* of King Himmat Bahadur is described (herein).[123]

---

[116] Note that this is based on Mishra's version, as 'Kanhaiya' is used thrice in this line; in Bhagvandin's version, the second and third terms are 'Kandhaiya', which can either mean shoulder or maybe it is the name of Arjun's elephant?
[117] 'Harahi hara ko'.
[118] 'Girija', or 'the Goddess of the Mountain,' a name of Parvati.
[119] Presumably through its nostrils, onto her garland of skulls.
[120] 'Loot and many horses and elephants'.
[121] Bhagvandin numbers this verse here as 210, but as it is a chhappay it only ends after the sixth line. Mishra numbers it correctly, with 211 total verses.
[122] 'Kali the skull-bowl grasper'.
[123] This is a refrain verse—see vv. 2, 46, 77, 181.